दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

निर्णय की तिथि : 8 जनवरी, 2014

सि.वि.(मू.) 576/2011 सहित सि.वि. सं. 9336 व 11612/2011

भारत हेवी इलेक्ट्रिकल लिमिटेड ..... अपीलार्थी

द्वारा: श्री सुधीर नंदराजोग, वरिष्ठ अधिवक्ता और श्री अरविंद चौधरी, अधिवक्ता।

बनाम

श्री आशुतोष इंजीनियरिंग इंडस्ट्रीज व अन्य ..... प्रत्यर्थीगण

द्वारा: श्री के.जी. शर्मा, प्र-1 हेतु अधिवक्ता।

कोरम:
माननीय न्यायमूर्ति श्री नजमी वज़ीरी

माननीय न्यायमूर्ति श्री नजमी वज़ीरी (खुला न्यायालय)

1. यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत दायर एक याचिका है, जिसमें विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश - 03 ("**अति.जि.न्या.**"), दक्षिण जिला, साकेत न्यायालय द्वारा मध्य. सं. 131/2010 ("**अपील**") को अनुज्ञात करते हुए दिनांक 21 मार्च, 2011 के पारित आदेश ("**आक्षेपित आदेश**") को चुनौती दी गई है। यह अपील माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 ("**अधिनियम**") की धारा 16 (2) सहपठित धारा 37 के अंतर्गत दायर की गई थी।

2. अप्रासंगिक विवरणों से परे, इस मामले की उत्पत्ति सिविल वाद सं. 14-ख वर्ष 2009 से जुड़ी है, जिसे प्रत्यर्थी सं.1 ने अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, रायपुर, छत्तीसगढ़ के न्यायालय में याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के विरुद्ध वसूली("**वाद**") हेतु दायर किया था। स्वीकृत रूप से, प्रत्यर्थी सं. 1 ने याचिकाकर्ता को प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा जारी की गई 5,22,611/- रुपये (पांच लाख बाईस हजार छह सौ ग्यारह रुपये मात्र) की बैंक गारंटी को भुनाने की कार्रवाई को चुनौती देते हुए वाद दायर किया था। उक्त बैंक गारंटी याचिकाकर्ता द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 को दिए गए कुछ क्रय आदेशों के संबंध में जारी की गई थी।

3. यह स्वीकार किया जाता है कि प्रत्यर्थी सं. 2 से 5, जो याचिकाकर्ता के कर्मचारी/अधिकारी हैं, क्रय आदेशों के पक्षकारगण नहीं हैं। यह भी स्वीकार किया जाता है कि बैंक गारंटी प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के पक्ष में नहीं थी और वे इसे अपनी व्यक्तिगत क्षमता में भुना नहीं सकते थे और वे केवल बैंक गारंटी के भुनाने की कथित अवैध कार्रवाई हेतु प्रत्यर्थी सं. 1 के साथ बातचीत कर रहे थे।

4. उक्त 5,22,611/- (पांच लाख बाईस हजार छह सौ ग्यारह रुपये मात्र) की राशि याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 द्वारा दुर्विनियोजित की गई, जब याचिकाकर्ता ने पूर्वोक्त बैंक गारंटी का अवलंब लिया; जिसके आह्वान से वादहेतुक शुरू हुआ माना जाता है। यह एक स्वीकृत स्थिति है कि

याचिकाकर्ता ने वाद में उपस्थिति दर्ज कराई और क्रय आदेशों में मध्यस्थता खंड/खंडों के अस्तित्व को ध्यान में रखते हुए वाद के विचारण हेतु न्यायालय के क्षेत्राधिकार के विषय में एक प्रारंभिक मुद्दा उद्भूत किया। प्रत्यर्थी सं.1 ने इस समय यह प्रतिवाद करने का प्रयास किया कि यह मामला मध्यस्थता योग्य नहीं है, क्योंकि इसमें याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी सं.2 से 5 के विरुद्ध कपट के मुद्दे उद्भूत किए गए हैं।

5. यह वाद छत्तीसगढ़ की रायपुर स्थित लोक अदालत को भेजा गया। प्रत्यर्थी सं.1 का मामला यह है कि लोक अदालत के समक्ष, पक्षकारगण द्वारा समझौते के लिए एक संयुक्त आवेदन दायर किया गया था, जिसके अंतर्गत पक्षकारगण ने वाद में संविवाद को मध्यस्थता हेतु संदर्भित करने पर सहमति व्यक्त की थी। याचिकाकर्ता ने आवेदन दायर करने या वाद में विवाद को मध्यस्थता हेतु संदर्भित करने पर सहमति व्यक्त करने के तथ्य से इनकार नहीं किया है। यद्यपि याचिकाकर्ता ने इस बात से इनकार किया है कि वाद में संपूर्ण संविवाद हेतु समझौते के लिए आवेदन दायर किया गया है, जैसा कि प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा प्रतिवाद किया गया। लोक अदालत ने दिनांक 6 सितंबर, 2009 के अपने आदेश द्वारा आवेदन को अनुज्ञात कर लिया, प्रत्यर्थी सं. 1 ने विद्वान एकमात्र मध्यस्थ ("**मध्यस्थ**") के समक्ष अपना दावा दायर किया, जिसमें याचिकाकर्ता और

प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के विरुद्ध वाद में दी गई राहत के समान ही राहत की मांग की गई।

6. याचिकाकर्ता ने मध्यस्थता कार्यवाही में भाग लिया और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 ("**संहिता**") के आदेश I नियम 10 के अंतर्गत एक आवेदन दायर किया। आवेदन के द्वारा, याचिकाकर्ता ने दावे में पक्षकारगण की श्रेणी से प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 को हटाने की मांग की। यह प्रतिवाद किया गया कि मध्यस्थता का संदर्भ क्रय आदेशों में मध्यस्थता खंड/खंडों के अंतर्गत था और उक्त प्रत्यर्थीगण न तो क्रय आदेशों के पक्षकारगण हैं, न ही उन्होंने प्रत्यर्थी सं. 1 के साथ व्यवहार करते हुए अपनी व्यक्तिगत क्षमता में कार्य किया है, और किसी भी मामले में बैंक गारंटी के भुनाने से प्राप्त आय निश्चित रूप से केवल याचिकाकर्ता के पास गई है। आवेदन के उत्तर में प्रत्यर्थी सं. 1 ने प्रतिवाद किया कि मध्यस्थता हेतु संदर्भ क्रय आदेश/आदेशों के अंतर्गत नहीं है, किंतु लोक अदालत के दिनांक 6 सितंबर, 2009 के आदेश के अंतर्गत है। प्रत्यर्थी सं. 1 ने प्रतिवाद किया कि वाद में संपूर्ण संविवाद मध्यस्थता हेतु संदर्भित किया गया है और चूंकि वाद में प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के विरुद्ध प्रतिविरोध और प्रार्थनाएं शामिल हैं, इसलिए संदर्भ केवल याचिकाकर्ता हेतु नहीं है, किंतु प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 हेतु भी है।

7. मध्यस्थ ने पक्षकारगण के प्रतिविरोधों पर विचार करने के बाद आवेदन को अनुज्ञात कर लिया और मध्यस्थता में प्रत्यर्थीगण की सूची से प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 को हटाने का निर्देश दिया। उन्होंने तर्क दिया:

7(i) यह वाद बैंक गारंटी के आह्वान को चुनौती देते हुए दायर किया गया था - जो स्वयं क्रय आदेश के अंतर्गत जारी किया गया था जिसमें मध्यस्थता खंड शामिल है/हैं - तथा याचिकाकर्ता द्वारा उसमें से धन का विनियोजन किया गया था।

7(ii) याचिकाकर्ता के आवेदन के आधार पर यह वाद लोक अदालत को संदर्भित किया गया था।

7(iii) लोक अदालत ने दिनांक 6 सितम्बर, 2009 के अपने आदेश द्वारा मामले को मध्यस्थता हेतु संदर्भित किया।

7(iv) मध्यस्थता में दावा उसी वाद हेतुक के आधार पर समान राशि की वसूली हेतु दायर किया जाता है।

7(v) मध्यस्थता शुरू करने के लिए, यह उन पक्षकारगण के मध्य करार पर आधारित होना चाहिए जिनके मध्य एक परिभाषित विधिक संबंध हो।

7(vi) वर्तमान मामले में, प्रासंगिक मध्यस्थता खंड क्रय आदेशों में पाया जाने वाला मध्यस्थता खंड है, जिसके आधार पर वाद और दावा दायर किया गया है।

7(vii) प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 न तो कार्यवाही में आवश्यक पक्षकार हैं, न ही उचित पक्षकार हैं, क्योंकि प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 उक्त मध्यस्थता करार में पक्षकार नहीं हैं; (ख) क्योंकि उन्होंने प्रत्यर्थी सं. 1 के साथ व्यक्तिगत क्षमता में लेन-देन नहीं किया; और (ग) क्योंकि बैंक गारंटी के भुनाने से प्राप्त राशि उन्हें नहीं मिली है।

8. मध्यस्थ के इस निर्णय पर आक्षेप करते हुए, प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा पूर्वोक्त रूप से अपील प्रस्तुत की गई। अपील में, चुनौती का प्राथमिक आधार यह था कि क्रय आदेशों में मध्यस्थ खंड/खण्डों तत्काल संदर्भ के रूप में प्रासंगिक मध्यस्थता करार नहीं हैं और पक्षकारगण द्वारा लोक अदालत के दिनांक 6 सितंबर, 2009 के आदेश के आधार पर संदर्भ दर्ज किया गया है, जिसमें प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के विरुद्ध संविवादों सहित पक्षकारगण के मध्य सभी संविवादों को संदर्भित किया गया है। याचिकाकर्ता ने, उत्तर में, अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रतिवाद किया कि समझौता आवेदन, किसी भी मामले में, केवल याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा दायर किया गया था और प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 उसमें पक्षकारगण नहीं थे।

9. अपील को आक्षेपित आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया गया। इसमें, अन्य बातों के साथ-साथ, यह तर्क दिया गया:

9(i) यह वाद प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के साथ-साथ याचीगण के विरुद्ध भी दायर किया गया था।

9(ii) पक्षकारगण के मध्य संविदा में जीएम/(टीबीजी), बीएचईएल, भोपाल या किसी अन्य व्यक्ति, जिसे एकमात्र मध्यस्थ नामित कर सकता है, के समक्ष मध्यस्थता द्वारा विवादों के समाधान का प्रावधान है।

9(iii) लोक अदालत को वाद संदर्भित करने पर, पक्षकारगण द्वारा एक संयुक्त आवेदन दायर किया गया जिसमें जीएम (टीबीजीएमएम), बीएचईएल, एकीकृत कार्यालय परिसर, लोधी रोड, नई दिल्ली के समक्ष मध्यस्थता हेतु संदर्भ मांगा गया।

9(iv) मध्यस्थता हेतु संदर्भ मांगने वाला यह आवेदन न केवल पक्षकारगण के मध्य संविदा के अंतर्गत उद्भूत विवादों के लिए है, किंतु बैंक गारंटी पर कथित अवैध भुनाने के लिए भी है।

9(v) दिनांक 6 सितम्बर, 2009 के आदेश द्वारा लोक अदालत ने इस आवेदन को अनुज्ञात कर लिया तथा पक्षकारगण को मध्यस्थता हेतु संदर्भित किया।

9(vi) चूंकि दिनांक 6 सितम्बर, 2009 के आदेश पारित होने की तिथि को, जिसका तार्किक अनुक्रम यह है कि दिनांक 6 सितम्बर, 2009 का संदर्भ आदेश लोक अदालत के समक्ष उपस्थित सभी प्रत्यर्थीगण हेतु है, जिसमें प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 तक शामिल हैं।

9(vii) वाद में प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के विरुद्ध भी कपट के आरोप और प्रार्थनाएं थीं, जो उनके विरुद्ध वादहेतुक अभी भी अस्तित्वयुक्त हैं।

9(viii) मध्यस्थ ने यह मानकर कार्यवाही में स्पष्ट रूप से गलत आचरण किया है कि संदर्भ पक्षकारगण के मध्य संविदाओं के अंतर्गत था, जबकि यह दिनांक 6 सितंबर, 2009 के आदेश के अंतर्गत था।

9(ix) इस प्रकार, प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 मध्यस्थता कार्यवाही में आवश्यक पक्षकार हैं और उन्हें हटाया नहीं जाना चाहिए था।

10. इससे व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने उपरोक्त याचिका प्रस्तुत की है। याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सुधीर नंदराजोग ने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध है और अभिलेखों के विपरीत है। उन्होंने कहा कि लोक अदालत का दिनांक 6 सितंबर, 2009 का आदेश प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 को आबद्ध नहीं कर सकता, क्योंकि वे कभी लोक अदालत के समक्ष उपस्थित नहीं हुए और न ही वे संयुक्त समझौता आवेदन में पक्षकार थे। उन्होंने न्यायालय का ध्यान संयुक्त

समझौता आवेदन की प्रति की ओर आकर्षित किया जिसमें प्रतिवादीगण की ओर से केवल याचिकाकर्ता के प्राधिकृत प्रतिनिधि के हस्ताक्षर हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया कि उक्त प्राधिकृत प्रतिनिधि को प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 द्वारा कार्यवाही में उनकी व्यक्तिगत क्षमता में उनका प्रतिनिधित्व करने के लिए प्राधिकृत नहीं किया गया था, और इसलिए, किसी भी मामले में, उक्त प्रतिनिधि उनकी ओर से किसी सहमति आदेश पर सहमत नहीं हो सकता था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश, इस हद तक कि यह मध्यस्थता व्यक्तियों को संदर्भित करता है जो क्रय आदेशों या दिनांक 6 सितंबर, 2009 के आदेश के पक्षकार नहीं हैं, स्पष्ट रूप से अवैध और क्षेत्राधिकार रहित है।

11. उत्तर में, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया कि आक्षेपित आदेश में कोई कमी नहीं है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि लोक अदालत के समक्ष सभी पक्षकारगण की ओर से समझौता आवेदन दायर किया गया था, जिसमें प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 तक के पक्षकार शामिल थे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि दिनांक 6 सितंबर, 2009 का आदेश, जो संयुक्त समझौता आवेदन के आधार पर पक्षकारगण की सहमति से पारित किया गया आदेश था, वाद के सभी पक्षकारगण पर आबद्धकर है। यह प्रतिवाद किया गया कि वाद में कपट और विश्वासघात के आरोप थे - ऐसे मुद्दे जो प्रत्यक्षतः क्रय आदेशों से उद्भूत नहीं होते - और इसलिए मध्यस्थता को

संदर्भित करने के किसी भी करार में क्रय आदेश से उद्भूत होने वाले मुद्दों के अलावा ऐसे विवाद शामिल होंगे। यह देखते हुए कि लोक अदालत के आदेश में सभी पक्षकारगण को मध्यस्थता हेतु संदर्भित किया गया था, इसका तार्किक अनुक्रम यह है कि प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 को भी मध्यस्थता हेतु संदर्भित किया गया था। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश विधि की त्रुटि नहीं था और इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए।

12. मैंने आक्षेपित आदेश, अभिलिखित मौजूद दस्तावेजों का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया है और पक्षकारगण की प्रस्तुतियों पर विचार किया है, और मैं याचिका को अनुज्ञात करने के लिए इच्छुक हूं। आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से विद्वान अति.जि.न्या. के क्षेत्राधिकार से बाहर है क्योंकि इसने वास्तव में प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 को प्रत्यर्थी सं. 1 के साथ अपने विवादों को मध्यस्थता द्वारा सुलझाने के लिए विवश किया है, जब उनके समक्ष अभिलिखित - अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत परिकल्पित - कोई करार नहीं था। यह विधि का एक सुस्थापित नियम है कि मध्यस्थता हेतु संदर्भ का दायरा मध्यस्थता कारारों की शर्तों के आधार पर निर्णीत किया जाना चाहिए (*देखें हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम पिंकसिटी मोटर्स, (2003) 6 एससीसी 503*)। यद्यपि, मौजूदा मामले में

मुद्दा यह है कि इस दस्तावेज में अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत परिकल्पित प्रासंगिक मध्यस्थता खंड है।

13. इस पृष्ठभूमि में मध्यस्थ ने, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, यह अभिनिर्धारित किया था कि अधिनियम की धारा 7 के अनुसार उनके समक्ष संदर्भ में प्रासंगिक करार क्रय आदेशों में पाया गया मध्यस्थ खंड है/हैं। इस आधार पर, मध्यस्थ ने अभिनिर्धारित किया कि चूंकि प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 उसमें पक्षकार नहीं हैं, इसलिए वे उसमें मध्यस्थ खंड/खंडों से आबद्ध नहीं हो सकते; इसलिए उन्होंने निर्दिष्ट किया कि प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 को अभिलेख से हटा दिया जाए। विद्वान अति.जि.न्या. ने इस निष्कर्ष को उलट दिया और अभिनिर्धारित किया कि संदर्भ के दायरे पर विचार करने के उद्देश्य से प्रासंगिक करार दिनांक 6 सितंबर, 2009 को लोक अदालत का आदेश है। हालांकि याचिकाकर्ता ने प्रतिवाद किया कि यह निष्कर्ष अपने आप में विधि की त्रुटि है, परंतु यह न्यायालय मामले के तथ्यों को देखते हुए, एक संभावित व्याख्या होने के नाते, अपने पुनरीक्षण/पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए इसमें हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझता।

14. यद्यपि, विद्वान अति.जि.न्या. ने आगे अभिनिर्धारित किया कि चूंकि प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 वाद में पक्षकार थे, इसलिए दिनांक 6 सितंबर, 2009 के आदेश द्वारा संदर्भ उन पर भी बाध्यकारी है। याचिकाकर्ता ने प्रस्तुत

किया कि यह विधि की त्रुटि है और अभिलेखों के विपरीत है। इस प्रस्तुति में काफी दम है। विद्वान अति.जि.न्या. के समक्ष अभिलेखों से यह स्पष्ट है कि संयुक्त समझौता आवेदन *प्रतिवादीगण* की ओर से श्री स्वयं प्रकाश द्वारा निष्पादित किया गया था, जो निस्संदेह याचिकाकर्ता का प्राधिकृत प्रतिनिधि है। ऐसा कुछ भी अभिलिखित नहीं है जो यह उपदर्शित करे कि प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 ने उक्त श्री स्वयं प्रकाश को मध्यस्थ के समक्ष उनका प्रतिनिधित्व करने के लिए प्राधिकृत किया था। किसी भी मामले में, प्रत्यर्थी सं. 1 ने न तो कोई प्रतिवाद किया है और न ही इसके विपरीत कुछ भी दर्शाने के लिए कोई दस्तावेज पेश किया है।

15. *इंडोविंड एनर्जी लिमिटेड बनाम वेस्केयर (इंडिया) लिमिटेड व अन्य*, (2010) 5 एससीसी 306 के मामले में उच्चतम न्यायालय को इस मुद्दे पर विचार करने का अवसर मिला कि दो व्यक्तियों के बीच मध्यस्थता करार कब विद्यमान माना जा सकता है। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

> *12. धारा 7 की उप-धाराओं (2), (3) और (4) के विश्लेषण से पता चलता है कि मध्यस्थता करार को लिखित रूप में माना जाएगा यदि इसमें निम्नलिखित निहित है: (क) पक्षकारगण द्वारा हस्ताक्षरित एक दस्तावेज; या (ख) पत्रों, टेलेक्स, टेलीग्राम या दूरसंचार के अन्य साधनों का आदान-प्रदान जो करार का अभिलेख प्रदान करते हैं; या (ग) दावे और प्रतिरक्षा*

के बयानों का आदान-प्रदान जिसमें करार के अस्तित्व का एक पक्षकार द्वारा आरोप लगाया जाता है और दूसरे द्वारा इनकार नहीं किया जाता है, या (घ) पक्षकारगण के मध्य एक संविदा जिसमें मध्यस्थता खंड युक्त किसी अन्य दस्तावेज का संदर्भ होता है जो ऐसे अन्य दस्तावेज से मध्यस्थता खंड को संविदा में शामिल करने के पारस्परिक आशय को दर्शाता है।

13. *यह मूलभूत है कि धारा 7 के उद्देश्य के लिए मध्यस्थता करार बनाने के लिए मध्यस्थता के प्रावधान को दो शर्तों को पूरा करना चाहिए: (i) यह विवाद के पक्षकारगण के मध्य होना चाहिए; और (ii) यह विवाद से संबंधित होना चाहिए या उस पर लागू होना चाहिए। (योगी अग्रवाल बनाम इंस्पिरेशन क्लॉथ्स एंड यू [(2009) 1 एससीसी 372] देखें।)*

16. वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 किसी भी दस्तावेज़ में निहित किसी भी करार के पक्षकार नहीं हैं, जिसमें प्रत्यर्थी सं. 1 उनके विवादों को मध्यस्थता हेतु संदर्भित करने के लिए सहमत है। न ही यह प्रत्यर्थी सं. 1 का मामला है कि दावों और प्रतिरक्षा के बयानों का आदान-प्रदान हुआ है जिसमें उसने मध्यस्थता करार के अस्तित्व का आरोप लगाया था और इसे प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 ने अपने प्रतिरक्षा बयान में स्वीकार किया है और इनकार नहीं किया है। प्रत्यर्थी सं. 1 का यह भी मामला नहीं है कि पत्रों, टेलेक्स, टेलीग्राम या दूरसंचार के अन्य साधनों के आदान-प्रदान से पक्षकारगण के मध्य किसी मध्यस्थता करार का अभिलेख उपलब्ध कराया जा सके। इस प्रकार यह देखना शेष है कि अधिनियम की धारा 7 की

उपधारा 4 के खंड (क) में दिए गए प्रावधान के अनुसार *पक्षकारगण द्वारा हस्ताक्षरित कोई दस्तावेज* है या नहीं।

17. स्वीकृत रूप से, प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 क्रय आदेशों के पक्षकार नहीं हैं। प्रत्यर्थी सं. 1 ने यह प्रतिवाद करने के लिए कोई साक्ष्य या अभिवचन भी नहीं दिए हैं कि प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 ने लोक अदालत के समक्ष सहमति व्यक्त की थी-- कि मामले को मध्यस्थता हेतु संदर्भित किया जाए। इसे देखते हुए, विद्वान अति.जि.न्या. का यह निष्कर्ष कि लोक अदालत का दिनांक 6 सितंबर, 2009 का आदेश प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 पर बाध्यकारी है, क्षेत्राधिकार से बाहर है और स्पष्ट रूप से अवैध है - अभिलेखों के विपरीत है। परिणामस्वरुप, आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाना चाहिए और तदनुसार इसे अपास्त किया जाता है। उपरोक्त कारण से, याचिका को अनुज्ञात किया जाता है; जुर्माने के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

नजमी वज़ीरी
(न्यायाधीश)

08 जनवरी, 2014

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*